विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P1 : आधुनिक हिंदी कविता-1**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M10: साकेत का नवम सर्गः पाठ विश्लेषण**
इकाई टैग	**HND_P1_M10**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. चित्तरंजन मिश्र** प्रोफेसर, हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर (उ.प्र.) ईमेल : chittranjanmishra@gmail.com
इकाई लेखक	**डॉ कमलानन्द झा** एसोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सी.एम.कॉलेज, दरभंगा, बिहार ईमेल : jhakn28@gmail.com
इकाई समीक्षक	**प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित** प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र) ईमेल : suryadixit123@gmail.com
भाषा संपादक	**डॉ. आनंद वर्धन शर्मा** प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल: anandsharma_64@yahoo.co.in

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. पाठ विवरण
4. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- साकेत के नौवें सर्ग का महत्त्व समझ सकेंगे।
- इस सर्ग के मूल भाव को समझ पायेंगे।
- इस सर्ग के किसी भी अंश की व्याख्या कर पाने में समर्थ होंगे तथा
- उसको लिखित रूप में भी अभिव्यक्त कर पायेंगे।

2. प्रस्तावना

मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' महाकाव्य का स्थान संपूर्ण हिंदी साहित्य में अप्रतिम है। अप्रतिमता का कारण यह है कि मैथिलीशरण गुप्तजी ने पहली बार हिंदी साहित्य में एक विलक्षण किंतु सर्वथा उपेक्षित स्त्री पात्र उर्मिला को वास्तविक अधिकार दिलाकर साहित्य में स्त्रियों की भूमिका के रेखांकन का बंद द्वार खोल दिया। उर्मिला के बाद स्वयं गुप्तजी तथा अन्य कई कवियों ने उपेक्षित स्त्री पात्रों को साहित्य के केंद्र मे लाया। साकेत का नवम् सर्ग महाकाव्य का प्राण है। पूरा सर्ग उर्मिला के अथाह वियोग और विराट् व्यक्तित्व को उद्घाटित करता है।

3. साकेत के नवम् सर्ग का विश्लेषण

दो वंशों में प्रकट ..... श्रम भी सुख-सा रहा।

गुप्तजी नवम् सर्ग का आरंभ मिथिला नरेश तथा विदेह कहे जाने वाले राजा जनक के विलक्षण गुणों का वर्णन तथा उनकी जयजयकार करते हुए कहते हैं कि जनकजी की महिमा अपार है जिन्होंने निमि और रघु दो वंशों को अपने गुणों से गौरवान्वित किया है। निमि वंश में स्वयं जन्म लेकर और रघु वंश में अपनी पुत्रियों का विवाह करके दोनों वंशों का मान बढ़ाया है। इनकी पुत्रियां सौ-सौ पुत्रों से अधिक गौरव बढ़ानेवाली हैं। जनकजी ऐसे व्यक्तित्व के धनी हैं जिनके शरण में त्यागी पुरुष भी आकर आश्रय लेते हैं, जो आसक्तिहीन होकर भी गृहस्थ हैं, राजा होकर भी योगी हैं। वे निष्ठावन धर्मात्मा हैं और सांसारिक विषयों से विमुख रहने वाले हैं। चूंकि सर्ग का मुख्य उद्देश्य उर्मिला के विरह को दर्शाना है, इसलिए कवि सर्ग के आरंभ से ही उर्मिला के गुणों से पाठकों का परिचय ही नहीं करा रहे बल्कि निकटता भी बढ़ा रहे हैं।

आगे कवि समय रहते राम के दोनों चरणों की वंदना न कर पाने से अत्यंत दुखी होकर कहते हैं कि मेरा जीवन पूर्णत: असफल होकर व्यर्थ ही व्यतीत हो गया। कवि को इस बात का भी दुख है कि वह न तो राम के चरण को पखार सका और न ही उस चरणामृत से अपनी कविता के दो पदों को रससिक्त कर पाया। इसी संदर्भ में कवि काव्य प्रक्रिया पर भी प्रकाश डालते हैं। वे कविता को संबोधित करते हुए कहते हैं कि तुम्हारा क्षेत्र कठिन है, सत्काव्य की रचना सरल कार्य नहीं है, फिर भी कवि प्रतिभा के अभाव में केवल श्रम से ही काव्य रचना करके मुझे उसी प्रकार का सुख मिल रहा है, जिस प्रकार का सुख कवि प्रतिभा के द्वारा रची हुई कविता से मिलता। आशय यह कि यद्यपि सुखदायिनी कविता की रचना करने के लिए कवि प्रतिभा अपेक्षित है तथापि राम विषयक कविता यदि श्रम से भी रची गई है तो वह भी उसी प्रकार का सुख देती है जिस प्रकार का सुख प्रतिभाजन्य कविता से मिलता है क्योंकि राम का चरित्र स्वंयमेव सत्काव्य है। गुप्तजी जब अपने में काव्य प्रतिभा की कमी की बात करते हैं तो इसे अभिधा में नहीं लिया जाना चाहिए। यह एक प्रकार की काव्य रूढ़ि है। कवि शालीनता प्रदर्शन के लिए ही ऐसा कहता है। जब तुलसीदास ऐसे महान कवि भी अपने बारे में कहते हैं 'कवित्त विवेक एक नहिं मोरे' तो गुप्तजी के लिए ऐसा कहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

करुणे क्यों रोती हो? ..... व्रत ले लिया।

साकेत महाकाव्य का नवम सर्ग उर्मिला वियोग की करुण महागाथा है। इसलिए कवि सीधे-सीधे करुणा को संबोधित करते हुए कहता है-हे करुणे! तू क्यों रोती है? भवभूति के 'उत्तररामचरित' में तो तू पहले ही बहुत रो चुकी है। यह सुनकर करुणा उत्तर देती है कि मैं इस कारण रो रही हूं कि जो विरह-भाव मेरी विभूति है, उसे संसार का ऐश्वर्य या शिव की भस्म या भवभूति कवि को ही इसका अंतिम कवि कयों माना जाये? कवि इन पंक्तियों में अपने द्वारा वर्णित विरह-वेदना का औचित्य बता रहे हैं। वे मानते हैं कि यद्यपि भवभूति कवि ने विरह-वेदना का इतना

सांगोपांग वर्णन किया है कि परवर्ती कवियों के लिए कुछ कहने के लिए प्रायः बचा ही नहीं है, तथापि यह भाव तो अनंत है, व्यक्ति-विशेष की अपनी अपनी विरह-वेदना और अपना-अपना रूप होता है। यह भाव संसार व्यापी है, शिव की भस्म की भांति कल्याणकारी भी है, अतः इसे तुच्छ या शांत मानना उचित नहीं है, इसलिए विरह-वेदना का जितना भी वर्णन किया जाये उतना ही कम है।

मानस-मंदिर में …….. बनी आरती आप।

कवि ने यहां लक्ष्मण के प्रति उर्मिला के प्रेम और उसके विरह ताप को दर्शाते हुए लिखा है कि उर्मिला अपने हृदय-रूपी मंदिर में अपने प्रियतम लक्ष्मण की मूर्ति स्थापित करके और स्वयं आरती बनकर उस विरह में जलती-सी रहती थी। भाव यह है कि उर्मिला अहर्निश अपने प्रियतम की याद में डूबी रहती थी और उसके विरह में अत्यंत दुखी होती रहती थी। इन दो ही पंक्तियों में कवि ने एक साथ कई अलंकारों का प्रयोग कर दिया है। 'मानस मंदिर' में मानस पर मंदिर का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार, 'सती पति' में छेकानुप्रास अलंकार तथा 'बनी आरती आप' में उर्मिला पर 'आरती' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

मिलाप था दूर दिर दार दारा।

मैथिली शरण गुप्त ने इन पंक्तियों में उर्मिला की विरह दशा का अत्यंत मार्मिक चित्र खींचा है। वे कहते हैं कि अभी प्रियतम से मिलन दूर था, क्योंकि वह तो चौदह वर्ष के लिए वन गया हुआ था। इस स्थिति में केवल विलाप करना ही नवविवाहिता उर्मिला के बस की बात थी। अर्थात् वह केवल विलाप करती रहे, उसके अतिरिक्त वह कुछ और कर भी नहीं सकती थी। जिस प्रकार वीणा से दिर, दार, दारा आदि स्वर निकल कर अपूर्व करुण रस की सृष्टि कर देते हैं उसी प्रकार उर्मिला का विलाप ही हमारे लिए अपूर्व तान है। तात्पर्य यह कि उर्मिला का विरह बहुत ही कारुणिक है। उसका वर्णन करने से उसी प्रकार स्वयमेव करुण गीत की रचना हो जाती है, जिस प्रकार वीणा के तारों से करुण तान निकलने लगती है।

सखि, विहग, दे हों सभी मुक्तिमानी, यह हत हिरणी क्यों छोड़ यों ही गए थे।

इन पंक्तियों का कवि उर्मिला के विरह को और अधिक उदात्त रूप देता है। उर्मिला अपने वियोग के इन क्षणों में किसी को बंधन में नहीं देखना चाहती है। वह अपनी सखी से कहती है कि जितने भी पक्षी पिंजड़े में बंद हैं, उन सभी को उड़ा दो, ताकि वे मुक्त हो कर आनंद से इधर- उधर विचरण कर सकें। तभी पिंजड़े में बंद तोते ने उर्मिला से वे ही शब्द कह दिए जो एक बार संयोग-काल में लक्ष्मण ने उससे कहे थे कि हे रानी ! तुम मुझसे मत रूठो उन्हें सुनकर उर्मिला अपनी सखी से कहती है कि इस दुष्ट तोते की आवाज तो सुनो। फिर वह तोते को संबोधित करती हुई कहती है कि हे खग! मैं तुम्हारी इस वाणी से बहुत प्रसन्न हूं। कहो तो जनकपुरी की किसी मैना से तुम्हारा विवाह करा दूं? लेकिन मैं भी तो वहीं की कन्या हूं जो अब त्यागी हुई हूं। अतः मुझे भय लगता है कि कहीं तुम भी मेरे प्रियतम की भांति अपनी प्रिया का त्याग न कर दो।

आगे उर्मिला तोते से कहती है कि हे तोते! यह तो बताओ कि तुम्हारे वे आचार्य कहां गये हैं जिन्होंने तुमको पढ़ाकर मनुष्य वाणी में बोलना सिखाया है? मेरे वे वीर प्रियतम कहां हैं जो प्रसन्न मुख वाले हैं? इस पर तोता उत्तर देता है कि वे शिकार खेलन गये हुए हैं तो वह कहती कि वे नये ही शिकारी हैं, अन्यथा वे मुझ मरी हुई हिरणी को यहीं छोड़कर न चले जाते। यहां कवि गुप्त जी ने वार्तालाप शैली का रचनात्मक प्रयोग किया है।

सखि, पतंग भी जलता है हा कितनी विह्वलता है!

सखी के द्वारा संध्या काल से दीपक जला दिए जाने पर उर्मिला के मन में जो भाव आते हैं उनका वर्णन वह अपनी सखी से करती हुई कहती है, कि हे सखी! दीपक और पतंग दोनों के मन में एक दूसरे के लिए अत्यधिक प्रेम हैं दोनों ओर ही प्रेम पल रहा है यदि दीपक पर पतंग जलता है तो पतंगों को अपने पास बुलाने के लिए दीपक भी जलता है। पतंग को जलते हुए देखकर दीपक दुखी होकर उससे कहता है कि भाई! तू क्यों व्यर्थ में ही स्वयं को जलाता है। जलते हुए दीपक की लौ हिलती रहती है। इस आधार पर कवि की कल्पना यह है कि मानो पतंग को जलने से मना कर रहा हो, लेकिन पतंग अपने प्रेम की आतुरता के कारण उसमें जलकर ही संतोष पाता है। उसकी यह प्रेम-विह्वलता अद्भुत है।

मैं निज आलिंद में खड़ी थी ..... छाती में छिपाई थी!

साकेत का नवम सर्ग खड़ीबोली हिंदी में वियोग और संयोग श्रृंगार की अद्भुत अभिव्यक्ति मानी गई है। उर्मिला का वियोग जितना ही घनीभूत है उसका संयोग भी उतना ही रसपूर्ण। उक्त पंक्तियों में गुप्त जी ने शालीनतापूर्ण संयोग श्रृंगार का मनोरम वर्णन किया है।

वर्षा ऋतु का समय है। ऐसे समय में उसे संयोगावस्था की एक घटना याद आ जाती है जिसका वर्णन वह अपनी सखी से करती है, कि हे सखी! एक रात ऐसी ही रिमझिम करके बूंदे पड़ रही थीं आकाश में ऐसी ही घटा छाई हुई थी। मैं अपने महल में अलिंद में खड़ी हुई थी, केतकी पुष्प् की महक चारों ओर फैली हुई थी जिससे सारा वातावरण महक रहा था। झींगुरों की झंकार हो रही थी जो मुझे बहुत ही प्रिय लग रही थी। उस झंकार का अनुकरण मैं अपने नूपुरों से करने लगी, अर्थात् मस्त हो कर अपने नूपुरों को बजाने लगी। उसी समय बिजली चमकी और बादलों का समूह गरज उठा। बिजली के प्रकाश में मैंने चौंककर देखा कि कोने में छिपे हुए मेरे प्रियतम खड़े थे। हे सखी! उन्हें देखकर मैं इतनी लज्जित हुई कि मैंने अपने मुख की लज्जा को उनकी छाती से लगाकर छिपाया, अर्थात् प्रेमवश मैं उनसे आलिंगनबद्ध हो गई।

हंसो, हंसो हे शशि, फूल, फूलो ..... झड़ी लगा दूं, इतना पिये हूं!

उर्मिला अपने दुख में दुखी तो है किंतु दूसरों को दुखी नहीं देखना चाहती है। वह अपार दुख में भी दूसरों को खुश और प्रसन्न देखना चाहती है। इन पंक्तियों में कवि ने उर्मिला की इसी स्वभावगत विशेषता की ओर संकेत किया है।

प्रकृति के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करती हुई विरहिणी उर्मिला कह रही है, कि हे चंद्रमा! तुम सदैव हंसते रहो, अर्थात् अपनी निर्मल चांदनी लेकर सदा आकाश में चमकते रहो। हे फूल! तुम भी फूलो और लता- रूपी हिंडोरे पर बैठकर झूलो तथा आनंदपूर्वक खिलते रहो। तुम्हें किसी प्रकार के दुख को सहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि रोने के लिए तो मैं ही काफी हूं और मैं वेदना-रूपी जल को इतना पिये हुए हूं कि चाहे मैं उसकी कितनी ही झड़ी लगा दूं, पर उसका अंत नहीं होगा।

प्रभु को निष्कासन मिला ..... राज्य तुझे धिक्कार!

इन पक्तियों में उर्मिला राज्य को तुच्छ मानती है। इतना ही नहीं उसका यह भी मानना है कि राज्य वैभव और धन- संपदा कलह की जननी होती है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण रामायण है।

राज्य को धिक्कारती हुई उर्मिला कहती है कि जिस राज्य के कारण राम जैसे महापुरुष को वनवास मिला, मुझे यह वियोग का जीवन मिला जिसे पाकर मैं बंदिनी की भांति जेल का- सा कष्टकारक जीवन व्यतीत कर रही हूं और सरल एवं गुणी श्वसुर दशरथ को मृत्यु दंड मिला, एसे राज्य को धिक्कार है।

शिशिर, न फिर गिरि-वन में ..... भाव- भुवन में !

हेमंत के बाद उर्मिला शिशिर ऋतु से वार्तालाप करती है। शिशिर को संबोधित करती हुई वह कहती है कि हे शिशिर! तू पतझड़ को प्राप्त करने के लिए पर्वतों और वनों में मत घूम। मैं अपने इस नन्दन के समान सुदंर तन में ही तुझको मनचाहा पतझड़ दे दूंगी। तुझे जितना कंपन चाहिए वह मेरे इस शरीर में विद्यमान है, क्योंकि विरह जन्य व्यथा के कारण मेरा शरीर दिन-रात कांपता रहता है। तुझे जितना पीलापन चाहिए, वह मेरे मुख से ले लो, क्योंकि मेरी सखी कहती है कि विरह जन्य व्यथा के कारण मेरे मुख पर पीलेपन का अभाव नहीं है। यदि तुम अपनी सर्दी से मेरे आंसुओं को मेरे हृदय रूपी बर्तन में जमा दे तो मैं निर्धन उसको अपने मन में मोती की तरह संभालकर रखूं, प्रियतम के प्रवासी होने के कारण मेरा हंसना तो छूट गया है, अब तुम मुझे ऐसी स्थिति में डाल दो कि मैं अपने जीवन में रो भी न सकूं। मेरी यह जानने की प्रबल इच्छा है कि हंसी और रुदन के अभाव में भाव रूपी जगत में क्या प्रभाव होता है।

एक मात्र उपमान तू ..... सरस, सुवास!

इन पंक्तियों में उर्मिला कमल को संबोधित करती हुई कई तरह के उपमाओं से उसे नवाजती है। वह कमल से कहती है कि हे कमल! तू ही एकमात्र उपमान है और तेरे अनेक उपमेय हैं। तू रूप, रंग, गुण, गंध में सबसे अधिक श्रेष्ठ ओर प्रशंसनीय है। तू मेरे प्रियतम के अंगों की शोभा का आभास देता है, अतः तुम्हें देखकर मुझे अपने प्रियतम के सुंदर अंगों की याद आ जती है। वह कमल से कहती है कि तू रस और सुगंधि से पूर्ण होकर खिल।

तू सुषमा का कर कमल ..... सरस, सुवास!

कमल को संबोधित करती हुई उर्मिला कहती है कि तेरा प्रयोग अनेक उपमानों में होता है । हाथ की शोभा के लिए, सुंदर गर्दन वाली रति के मुख की शोभा के लिए, चंचल नेत्रों की शोभा के लिए और राम के चरणों की शोभा के लिए तेरा ही प्रयोग किया जाता है। चाहे तू लहरों को लेकर उसी प्र कार रास- लीला कर, जिस प्रकार कृष्ण गोपियों को लेकर किया करते थे। तू रस और सुगन्धि से परिपूर्ण होकर खिल।

हे मानस के मोती ..... जो तुम्हें पहचाने?

घनघोर विरह की दशा में उर्मिला न जाने किस- किस को संबोधित करती है। इसी क्रम में वह आंसुओं को संबोधित करती हुई कहती है कि जिस प्रकार मानसरोवर के मोती उसके वैभव को प्रकट करने वाले होते हैं, उसी प्रकार तुम मेरे पति-प्रेम को प्रकट करने वाले हो। लेकिन यह तो बताओ कि तुम बिना कुछ जाने ढुलककर कहां जा रहे हो, यदि तुम प्रियतम के पास जाना चाहते हो तो वे तो बहुत दूर किसी वन में होंगे। जहां तक तुम्हारी पहुंच नहीं है। यदि तुम मार्ग के बीच में ही किसी से सहायता लेना भी चाहोगे तो तुम्हें कोई सहायता भी नहीं देगा, क्योंकि तुम सबके लिए अपरिचित हो, कोई तुम्हें नहीं जानता। इसलिए तुम्हारा आंखों से छलकना बेकार है।

नयनों को रोने दे मन ..... अश्रुबिंदु ढोती है?

अपने मन से बातचीत करती हुई उर्मिला कहती है कि हे मन! अपनी संकीर्णता के कारण नेत्र तो प्रियतम को नहीं देख पा रहे हैं इसलिए ये रोते हैं और इनका रोना उचित भी है, क्योंकि अपनी संकीर्णता के कारण ये मेरे हृदय में बसे हुए प्रियतम को नहीं देख पाते। तुम इनकी तरह संकीर्ण मत बनो, क्योंकि तुम तो जानते हो कि प्रियतम मेरे हृदय में बैठे हुए हैं। वे भले ही आंखों से ओझल हो गए हैं, फिर भी स्मृति के रूप में वे निरंतर मन में ही बसे रहते हैं।

तत्पश्चात् उर्मिला आंख को संबोधित करती हुई कहती है कि तू भी यह सच- सच बता कि तू हंसती है या सचमुच रोती है, क्योंकि तेरी लाल कोर- रूपी अधर में आंसू की बूंद- रूपी चमकते हुए दांत तेरी हंसी को ही व्यक्त करते हैं। और अगर तू केवल इन आंसुओं की बूंदों का ही भार ढोती है तो तू वास्तव में रोती है, जो तेरे लिए उचित नहीं है।

आये एक बार प्रिय बोले ..... रीझ उठी उस मुसकान में!

उर्मिला अपनी सखी को संयोगावस्था की एक सुखद घटना को सुनाती हुई कह रही है कि हे सखी! एक बार मेरे प्रियतम मेरे पास आए और मुझसे कहने लगे कि मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूं और क्योंकि वह बात छिपाने योग्य है इसलिए कान में सुनो। मैंने कहा कि यहां हम दोनों के अतिरिक्त और है ही कौन जो कान में बात कहने की आवश्यकता हो। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि दीवारों पर जो चित्र लगे हुए हैं, राजनीति के नियमानुसार ये भी गोपनीय बातों को सुन लेते हैं। इस पर मैंने कान उनकी ओर कर दिया और उन्होंने अपने होंठों से मेरे कपोलों को चूमकर लाल कर दिया। हे सखी! छल के द्वारा लिए गए उस चुंबन से मुझे जो अपार आनंद की अनुभूति हुई उसका मैं वर्णन नहीं कर सकती। जब मैंने उनकी ओर तनिक क्रोध करके देखा तो वे मुस्करा कर कहने लगे कि वीर पुरुष किसी कार्य को कर डालते हैं, उसके विषय में कहते नहीं। हे सखी! उनके इस व्यवहार पर लज्जित होकर भी मैं रीझ गई।

अब भी समक्ष वह नाथ खड़े थे ..... कह, कौन भाग्य-मय भोग सखी?

विरहिणी उर्मिला अपनी सखी से कह रही है कि हे सखी! मुझे लगता है कि अब भी प्रियतम मेरे सामने ही खड़े हुए हैं, पर जब मैं उन्हें बाहुपाश में बांधने का प्रयत्न करती हूं तो मेरे हाथ आगे तो बढ़ते हैं, किंतु खाली ही रह जाते हैं। मेरी यह स्थिति न तो वियोग की है और न भोग की, क्योंकि मैं प्रियतम में इतनी रम गई हूं कि वह सदैव मुझे अपने पास ही दिखाई देते हैं, इसीलिए तो उनसे वियोग नहीं माना जा सकता, परंतु वास्तविकता यह है कि वे मेरे पास ही नहीं हैं, अतः यह संयोग तथा भोग की अवस्था भी नहीं है। तुम्ही बताओ, मैं अपने किस दुर्भाग्य का फल भोग रही हूं।

स्वजनि, क्या कहा ..... उन्माद, भ्रांति है?

उर्मिला की उन्माद- भरी बातों को सुनकर उसकी सखी उसे समझाती है कि प्रिय के विषय में व्यर्थ ही अनुचित बातें कह दी हैं तो वह इस पर दुख प्रकट करती हुई अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! मुझे धिक्कार है जो मैं अपने प्रियतम पर भी विश्वास न कर सकी। पर यह तो मेरे वश की बात न थी, क्योंकि उन्माद ने मेरे समूचे ज्ञान को नष्ट कर दिया था। अब तू ही बता कि इस भीषण पाप का मैं क्या प्रायश्चित करूं, क्योंकि मैंने जो अनर्थ किया है, वह अपार है, इसका प्रायश्चित करना भी असंभव है।

हट सुलक्षणे, रोक तू न यो, ... अलि, क्या कहा?

उर्मिला यह अनुभव करती है कि उसका प्रियतम उसकी भर्त्सना करके और रूठ कर वापिस वन जा रहा है। वह उसे पकड़ने के लिए दौड़ती है तो उसकी अंतरंगिनी सखी सुलक्षण उसे पकड़ लेती है। जब उर्मिला कहती है कि हे सुलक्षणे! मेरे सामने से हट जा। मुझे मत रोक। मैं पापी हूं, मुझे तू इस प्रकार न टोक। बेचारे लक (उर्मिला लक्ष्मण कहना चाहती थी, पर उसकी सखी ने उसे बीच में ही रोक दिया, क्योंकि अपने पति का नाम लेना शास्त्रों के विरुद्ध है। अतः 'लक' कह करके ही रह गई) हे उर्मिले! यह क्या करती हो , तुम्हें अपने पति का नाम नहीं लेना चाहिए और फिर तुम्हारा पति यहां है भी कहां? तुम्हें तो व्यर्थ ही यह भ्रम हो गया है। यहां गुप्त जी पाठकों को भारतीय संस्कृति की याद दिलाते हैं कि यहां की स्त्रियां सम्मान में पति का नाम नहीं लेती हैं।

जब जल चुकी विरहिणी बाला ..... सती हीन ज्यों शूली।

उर्मिला अपनी सखी को बता रही है कि वह किस प्रकार का चित्र अंकित करना चाहती है। वह बताती है कि जब विरहिणी बाला जल चुकी और उसकी चिता की आग भी बुझने लगी तब वह विरही इस प्रकार वहां पहुंचा, जिस प्रकार सती के यज्ञकुंड में भस्म हो जाने पर शिव पहुंचे थे। इसलिए सखी जल्दी कूची ला मैं इस भाव का चित्र जल्दी बना लूं अन्यथा फिर भूल जाउंगी।

सिर माथे तेरा यह दान ..... हे मेरे प्रेरक भगवान।

विरहिणी उर्मिला भगवान से विनती करती हुई कहती है कि हे मेरे प्रेरक भगवान! तुमने जो मुझे विरह- दुख का दान दिया है, वह मैं सहर्ष स्वीकार करती हूं। जब तुमने अपनी इच्छा से मुझे यह दान दे दिया है तो अब तुम्हारे सामने हाथ फैलाकर और क्या मांगू? मैं तो केवल यही विनती करती हूं कि मेरे प्रियतम मुझे भूलकर वन में उसी प्रकार निश्चिंत होकर विचरण करते रहें जिस प्रकार कोई वैभवशाली मनुष्य अपने कर्मों को करता है। लेकिन मैं सदैव उनका ध्यान करती रहूं, कभी उन्हें न भूलूं।

अवधि शिला का उर ..... दृगजल- धार।

उर्मिला के हृदय पर अवधि रूपी चट्टान का भारी भार था उसकी आंसू रूपी धारा तिल-तिल करके उसे काट रही थी। आशय यह कि उर्मिला अपने अश्रुजलधार से अवधि के चट्टानी दिनों को काट रही थी। अर्थात् वह लक्ष्मण के स्मरण में भारी दिनों को बिता रही थी।

4. निष्कर्ष

इस प्रकार मैथिली शरण गुप्त नवम सर्ग का अंत अत्यंत कारुणिक ढंग से करते हैं। उर्मिला का विरह वर्णन संपूर्ण हिंदी साहित्य में मील का पत्थर माना जाता है। गुप्त जी ने साकेत की रचना कर और उसमें भी नवम सर्ग रच कर उर्मिला को अजर-अमर कर दिया।